

वर्ष ३

भक्ताङ्क

संख्या १

ॐ

कल्याण



सचित्र मासिक पत्र

वार्षिक मू० ४)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ११ संवत् १९८५

इस अंकका १॥)





**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

**KAPWING**

## श्रीहरिः

### विषय सूची

पृष्ठसंख्या	पृष्ठसंख्या
(पहले पृष्ठका श्लोक काव्यतीर्थ, सांख्यतीर्थ, स्मृतितीर्थ, वेद्यवर पं० हरिवंशजी जोशी रचित है)	
१-भक्तवत्सल (सूरदासजी) ... १	१६-भक्ति (जगद्गुरु स्वामीजी श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज) ... ४३
२-नूतन वर्षकी भेंट ... २	२०-अहो ! गिरिधारन ! 'कविता' (सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार) ... ४६
३-भक्तोंका स्वरूप (श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर) ... ३	२१-सच्चे वैरागी भक्त रांका बांका (श्रीरामदासजी गुप्त) ... ४७
४-महात्माजीका उपदेश ... ४	२२-श्रीगीता-भगवद्भक्ति-मीमांसा (विद्या-मार्तण्ड पं० सीतारामजी शास्त्री) ... ४८
५-हिडोला (पं० आनन्दशंकर बापूभाईजी ध्रुव, आचार्य विन्ध्यविद्यालय, काशी) ... ५	२३-भगवद्भक्त तुकारामजी (श्रीदिनकर गंगाधर गोरे वी० ए०) ... ५६
६-अनन्य प्रेम ही भक्ति है (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ७	२४-भक्त और चमत्कार (स्वामीजी श्रीरघुनाथ-दासजी) ... ५६
७-मालिकका दात, 'कविता' (कवीन्द्र श्रीवीरन्द्रनाथ शर्कर) ... ६	२५-वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्म श्रीकृष्ण हैं (एक प्रेमी मिल) ... ६१
८-भक्ति और भक्तिकी साधना (श्रीभूपेन्द्रनाथ सम्पाद) ... १०	२६-हरिनाम भजो 'कविता' (श्रीलालकुंअरिजी राजमाता, नीमाज) ... ६६
९-भक्तराज भाष्मपितामह (श्रीरामदासजी गुप्त) १७	२७-महर्षि श्रीबाल्मीकिजी ... ७०
१०-भक्त कण्ठपत्र चक्रवर्ती श्रीराजगोपालाचारी) २१	२८-भक्त श्रीधर (परलोकगत श्रीसाध्वगौड़ेश्वर-चार्य मधुसूदनजी गोस्वामी सार्वभौम) ७१
११-भक्तिका स्वरूप और उससे लाभ (श्रीयादवजी महाराज) ... २५	२९-श्रीज्ञानदेव महाराज (श्रीयुत 'अग्रवाल') ७६
१२-धनय 'कविता' (श्रीकेशरीकिशोर शरणजी) २७	३०-भक्तवर सूरदासजी (श्रीरामदासजी गुप्त) ७८
१३-भगवान् धनसे प्रसन्न होते हैं या भक्तिसे ? (श्रीरामदासजी गुप्त) २८	३१-ईश्वरभक्तकी पहचान (पं० श्रीवासीरामजी, सम्पादक 'पारीकप्रकाश' दिल्ली) ८०
१४-वारिधर बोरे देत 'कविता' (पं० वैद्य-नाथजी मिश्र 'विहल') ... ३०	३२-श्रद्धा और भक्ति (पं० श्रीरमापतिजी मिश्र बम्बई) ८०
१५-अल्सीसाईके महात्मा सन्त फ्रांसिस की वी० एफ० एंडरुज) ... ३१	३३-ज्ञान, भक्ति और इनका सम्बन्ध (पं० श्रीगणेशदत्तजी ध्यास काव्यतीर्थ) ८५
१६-अहल्या-उद्धार 'कविता' (पं० रमापतिजी मिश्र 'श्रीपति') ... ३८	३४-भक्तिकी विशेषता (स्वामीजी श्रीअयुत-मुनिजी महाराज) ... ८७
१७-भक्तवर अर्जुन (श्रीरामदासजी गुप्त) ३६	३५-गुरु नानक ... ८३
१८-कर 'कविता' (मा० श्रीहरियुलालजी) ४२	३६-निष्काम भक्ति (श्रीमेलारामजी वैद्य) ८५
	३७-श्रीगदाधर भट्ट (श्रीरामदासजी गुप्त) ८७

३८-भक्ति-सुधा-सागर-तरङ्ग (श्रीयुक्त यन्त्रारुढ़)	६८	६६ भक्ति-प्रचारक चार प्रधान आचार्य	१८६
३९-भक्तिमार्ग (देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री)	११०	६७ सुधा पढ़ावत गणिका तारी	१६१
४०-गुरुगौरव 'कविता' (श्रीविद्योगी हरिजी)	११६	६८ नवधामभक्ति और नौ भक्तोंके जीवनकी विशेषता (पं० श्रीराधाकृष्णजी मिश्र)	१६३
४१-महाराज रन्तिदेव (श्रीरामदासजी गुप्त)	११८	६९ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य, (खिवेदोपाह्व श्रीभगवदासजी ब्रह्मचारी 'वेदरत्न')	१६५
४२-गृहस्थमें भक्तिके साधन (श्रीहरिप्रपन्नजी अग्रवाल) ...	११९	७० ज्ञानोपदेश 'कविता' (श्रीवैद्यनाथजी मिश्र 'विह्वल') ...	१६६
४३-भक्तिप्रियो माधवः (व्याख्यान वाचस्पति पं० श्रीदीनदयालजी शर्मा) ...	१२१	७१ गीतामें भक्ति (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	२००
४४-शरणागतवत्सल महाराज शिव (श्रीरामदासजी गुप्त) ...	१२२	७२ श्रीश्रीअनन्त महाप्रभु (श्रीराघवदासजी)	२०३
४५-असुरोंकी भगवद्भक्ति (श्रीरामानाथजी अग्रवाल)	१२५	७३ चार प्रसिद्ध अग्रवाल भक्तोंका संक्षिप्त चरित ...	२०६
४६-भक्तकी चाह 'कविता' (वाणीभूषण पं० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल) ...	१२६	७४ बिगरी कौन सुधारे 'कविता' (श्रीअम्बा-प्रसादजी, चरखी दादरी) ...	२०६
४७-भगवत्-शरण (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)	१२७	७५ भक्ति (श्रीहरिभाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'व्यासभूमि') ...	२१०
४८-गीतामें भगवत्-प्राप्ति (श्रीअनिलवरणराय, अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी) ...	१३७	७६ सन्तवर ! 'कविता' (पं० प्रेमनारायणजी लिपाठी 'प्रेम') ...	२१६
४९-मुसलमान साध्वी रबिया	१४४	७७ भागवत-धर्मके ज्ञाता बारह भक्तराज (श्रीरामदासजी गुप्त) ...	२१७
५०-ईसाई तपस्विनी कैथेरिन (श्रीरामदासजी गुप्त)	१४५	७८ यवन हरिदास (श्रीरामदासजी गुप्त)	२२१
५१-सत्संगतिकी महिमा, कार्पासाराम वरद चरित (पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी)	१४६	७९ हमारी जीभ 'कविता' (श्रीअनन्तविहारीजी माथुर 'अवन्त') ...	२२२
५२-निष्काम भक्त युधिष्ठिर (श्रीरामदासजी गुप्त)	१४६	८० सच्चा भक्त कौन है ? (परलोकगत स्वामी संगलनाथजी) ...	२२३
५३-भक्तोंके भगवान् (श्रीघनश्यामदासजी गुप्त)	१५१	८१ लोकमान्य तिलक और देशबन्धु दास	२२४
५४-अनल-हक 'भक्त मन्सूरको शूली' (श्रीहीरालालजी अग्रवाल बेगूसराय)	१५६	८२ भक्तोंके लक्षण (श्री गौरीशंकरजी)	२२४
५५ प्रेम और कल्याणका मार्ग (पं० राम-सेवकजी लिपाठी, मैनेजिंग एडिटर 'माथुरी')	१५८	८३ कामना 'कविता' (कविवर पं० गंगासहाय-जी पाराशरी 'कमल') ...	२२४
५६ रुद्रावतार भगवान् मारुति (श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०) ...	१६३	८४ द्वैतमत स्थापनाचार्य श्रीश्रीमध्वाचार्य (श्री आर० एस० हकरीकर एम० ए०)	२२५
५७ विभु विधान 'कविता' (श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)	१७१	८५ भक्तिप्रकाश (महन्त श्रीरघुवरप्रसादजी, बड़ा स्थान, अयोध्या) ...	२२६
५८ आत्मसमर्पण 'कविता' (श्रीरामनरेशजी लिपाठी)	१७१	८६ कल्याणमार्ग (श्रीहरस्वरूपजी जौहरी एम० ए०) ...	२२७
५९ उपदेश 'कविता' (श्री 'विह्वल')	१७१	८७ कर्णाटकके भक्त श्रीजगन्नाथदासजी (श्री वी० बी० आल्टर बी० ए० एल० एल० बी०)	२३१
६० कामना 'कविता' (श्री 'तर्कवस्त')	१७१	८८ श्रीमद्विद्यारण्य महामुनि (श्रीहरि राम-चन्द्रजी दिवेकर एम० ए०) ...	२३२
६१ प्रेम और प्रेमके पुजारियोंका कुछ परिचय (पं० श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	१७२		
६२ भक्त (पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र, प्रभाकर)	१८१		
६३ ज्ञान और भक्ति (श्रीरोनाल्ड निक्सन)	१८२		
६४ भीलका सरल प्रेम (श्रीरामदासजी गुप्त)	१८५		
६५ सद्गुरु रामयज्ञजी (रायबहादुर कुमार श्रीकोशलेन्द्रप्रताप साहिजी) ...	१८७		

पृष्ठसंख्या	पृष्ठसंख्या
८६ महाराष्ट्र-सन्त (बाबा राघवदासजी) २३५	६५ नम्र निवेदन (श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, संपादक) २४४
८७ नानक वाक्सुधा (श्रीरामदशरणी) २३८	६६ नये भक्तकी प्रार्थना 'कविता' ( श्रीविन्ध्याचल प्रसाद 'विशारद' ) २४५
८८ भक्तोंके भाव (श्रीज्वालाप्रसादजी कानोढ़िया) २३६	६७ रक्षाबन्धन (बाबा राघवदासजी) २४६
८९ मुक्ति (श्रीगुलाबरायजी एम० ए० एल० एल० बी०) २४१	६८ प्रभो ! 'कविता' ( पं० बद्रीप्रसादजी आचार्य विशारद ) २४६
९० चित्र-परिचय ... २४२	६९ कल्याण कार्यालयकी पुस्तकें १०० भ्रम-संशोधन
९१ भक्ति और ब्राह्मण जाति ( श्रीरामकिंकर- प्रसादजी ) २४३	१०१ विनय ( टाइटल पेजके तीसरे पृष्ठपर )

### चित्रसूची

पृष्ठसंख्या	पृष्ठसंख्या
१ भगवान् श्रीकृष्ण ... (रंगीन) मुखपृष्ठ	२८ निष्काम भक्त रबिया ... १४५
२ भीष्मपितामह ... (रंगीन) १	२९ तपस्विनी कैथेरिन ... १४५
३ चरणसेवन-भक्त श्रीलक्ष्मीजी (रंगीन) ७	३० श्रीकृष्ण-कृष्णा ... १५२
४ मालिकका दान ... ६	३१ चरण-पखारन ... १५५
५ स्मरण-भक्त प्रह्लाद ... (रंगीन) १५	३२ भरत-गुह मिलाप ... १५६
६ श्रीकृष्ण-गुप्तिष्ठिर ... २०	३३ मारुति-प्रभाव ... (रंगीन) १६४
७ समर्थ रामदासजी और छ० शिवाजी २६	३४ मीराबाई (सांपसे शालिग्राम) ... १७०
८ पूजनभक्त ब्राह्मण और राजा चोल ... ३०	३५ प्रेमी भक्त रसखानजी ... (रंगीन) १७८
९ ब्राह्मण और चाण्डाल ... ३१	३६ चक्रिक भीलको भगवद्दर्शन ... १८५
१० अहक्या-उद्धार ... (रंगीन) ३८	३७ सद्गुरु रामयज्ञजी ... १८७
११ सत्य भक्त अर्जुन ... (रंगीन) ४२	३८ श्रीअनन्त महाप्रभुजी ... १८७
१२ परमधैर्यवान् भक्त-दम्पति रांका बांका ४७	३९ भक्तिके चार प्रधान आचार्य ... १९०
१३ देवदेव भगवान् महादेव (रंगीन) ५१	४० सुआ पढ़ावत गणिका तारी (रंगीन) १९२
१४ सन्त तुकारामजी ... ५७	४१ आचार्य श्रीमध्वाचार्यजी ... १९६
१५ कर्तन और श्रवण भक्त श्रीशुकदेवजी और राजा परीक्षित ... (रंगीन) ६४	४२ वैष्णवाचार्य श्रीश्रीरामानन्दाचार्यजी १९६
१६ देवर्षि नारद और व्याध ... ७०	४३ श्रीविद्यारण्य महामुनि ... १९७
१७ महामुनि वाल्मीकिजी ... ७१	४४ सेठ रामदयालुजी नेवटिया ... २०७
१८ सिद्ध-भक्त ज्ञानदेवजी ... (रंगीन) ७६	४५ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ... २०७
१९ शरणागत-भक्त सूरदासजी ... ७८	४६ सेठ जयनारायणजी पोद्दार ... २०८
२० गोस्वामी तुलसीदासजी ... ७६	४७ सेठ लक्ष्मीनारायणजी पोद्दार ... २०८
२१ श्रीराम-जन्मायु ... ८५	४८ भक्तिके बारह आचार्य ... २१७
२२ प्रेमान्मत्ता विदुर पत्नी ... (रंगीन) ६२	४९ श्रीगौराङ्ग महाप्रभु ... २२०
२३ वन्दन-भक्त अकूरजी ... (रंगीन) १००	५० श्रीनिव्यानन्द हरिदासका नाम वितरण २२५
२४ नन्दुखकातर महाराज रन्तिदेव ... ११८	५१ देशबन्धु चितरञ्जनदास ... २२४
२५ शरणागत-भक्त विभीषण ... १२५	५२ लोकमान्य तिलक ... २२४
२६ आत्मनिवेदन-भक्त राजा बलि ... १३०	५३ भक्त माधवदासजी ... (रंगीन) २२६
२७ सत्य-भक्त सुदामाजी ... (रंगीन) १३८	५४ गुरु नानक ... २३७
	५५ माणिक्य महाप्रभु ... २३७

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



वस्य म्वादुफलानि भोक्तुमभितो लालायिताः साधवः,  
आम्यन्ति व्यनिशं विविक्तमतयः सन्तो महान्तो मुदा ।  
भक्तिज्ञानविरागयोगकलवान् सर्वार्थसिद्धिप्रदः,  
मोक्षं प्राणिमुखावहो विजयते कल्याणकल्पद्रुमः ॥

भाग ३

द्वितीय श्रावण कृष्ण ११ संवत् १९८५

{ संख्या १

## भक्तवत्सल

वा पट पीतकी फहरान !

कर धरि चक्र चरनकी धावनि, नहिं विसरति यह वान ॥  
रथते उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रजकी लपटान ।  
मानो सिंह सैलतें निकरयो, महामत्त गज जान ॥  
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यो, मोटि वेदकी कान ।  
सोई सुर सहाय हमारे, निकट भये हैं आन ॥

( श्रीदासजी )





बहुत गयी थोड़ी रही, नारायण अब चेत ।  
 काल चिरैया चुगि रही, निसिदिन आयूँ सेता ।  
 काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।  
 पलमहं परलै होयगी, बहुरि करेगा कव ॥  
 रामनामकी लूट है, लूटि सकै तो लूट ।  
 फिरि पाछे पछितायगा, प्रान जायगे छूट ॥  
 तेरे भावें जो करो, भलो बुरो संसार ।  
 नारायण तू बैठकर, अपना भवन बृंहार ॥

उम्र बीत रही है, रोज रोज हम मौतके नजदीक पहुँच रहे हैं। वह दिन दूर नहीं है जब हमारे इस लोकसे कूचकर जानेकी खबर अड़ोसी पड़ोसी और सगे सम्बन्धियोंमें फैल जायगी। उस दिन सारा दुःख मोघर हो जायगा। सारी शान धूलमें मिल जायगी। सबसे नाता टूट जायगा। जिनको मेरा मेरा कहते जीभ सूखती है, जिनके लिये आज लड़ाई उधर लेनेमें भी इन्कार नहीं है, उन सबसे सम्बन्ध छूट जायगा, सब कुल पराया हो जायगा। मनका हवासहल पल भरमें दह जायगा। जिसे शरीरको रोज घों घोंछकर सजाया जाता है—सर्दी गर्मीसे बचाया जाता है, जरासी हवासे परहेज किया जाता है—सजावटमें तनिकसी कसर संकोच पैदा कर देती है। वह सोने ला (?) शरीर राखका ढेर होकर मिट्टीमें मिल जायगा। जानवर खाएँगे तो बिछा बन जायगा, सड़ेगा तो कीड़े पड़ जायँगे। यह सब बातें सत्य—परम सत्य होनेपर भी हम उस दिनकी दुःखनीय दशाको भूलकर याद नहीं करने। यही बड़ा अचरज है। इसीलिये बुध्दिष्ठिरने कहा था।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।

शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

प्रतिदिन जीव मृत्युके मुखमें जा रहे हैं पर अचे दुःख

लोग अमर रहना चाहते हैं इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा ? अतएव भाई, बेखबर मत रहो। उस दिनको याद रखो, सारी सोखी चूर हो जायगी। ये राजमहल, सिंहासन, ऊँची ऊँची इमारतें, किसी काममें न आयेगी। बड़े शौकसे मकान बनाया था, सजावटमें धनकी नदी बहा दी थी पर उस दिन उस प्यारे महलमें दो घड़ीके लिये इस देहको स्थान न मिलेगा। घरकी सारी मालिकी छिनमें छिन जायगी। सारी पदमर्यादा जाती रहेगी।

इस जीवनमें किसीकी कुछ भलाई की होगी तो लोग अपने स्वार्थके लिये दो चार दिन तुम्हें याद करके शेलेंगे ! समाजोंमें शौकके प्रस्ताव पास कर रश्म पूरी कर दी जायगी ! दुःख देकर मरोगे तो लोग तुम्हारी लाशपर थूकेंगे, वश न चलेगा तो नामपर तो रुपचाप जरूर ही थूकेंगे। बस, इस शरीरका इतना सा गाता यहाँ रह जायगा !

अभी कोई भगवान्‌का नाम लेनेको कहता है तो जवाब दिया जाता है 'मरनेकी भी फुरत नही है, कामसे वक्त ही नहीं मिलता।' पर याद रखो, उस दिन आपसे आप फुरत मिल जायगी। कोई बहाना बचेगा ही नहीं। सारी उल्लूकद मिट जायगी—तब पछतावोसे रोओगे—पर, 'फिर पछताए का दनै जब बिड़िया चुग गयी खेत' मनुष्य जीवन जो भगवान्‌को प्राप्त करनेका एकमात्र साधन था उसे यों ही खो दिया; अब बस, रोओ ! तुम्हारी गफलतका यह नतीजा ठीक ही तो है !

पर अब भी चेतो ! विद्या-बुद्धि-वर्णधन-ज्ञान-पदका अभिमान छोड़कर सरलतासे परमात्माकी शरण लो। भगवान्‌की शरणके सामने ये सभी कुछ लुप्त हैं, नगण्य हैं !

विद्या बुद्धिके अभिमानमें रहोगे—फल क्या होगा ? तर्क-वितर्क करोगे, हार गये तो रोओगे—पश्चात्ताप होगा। जीत गये तो अभिमान बढ़ेगा। अपने सामने दूसरोंकी मूर्ख समझोगे। 'हम सिद्धित हैं' इसी अभिमानने तो आज हमारे

मनसे बड़े बड़े पुरस्कारोंको सर्वनामका दाइयल बख्श दिया है। इस बुद्धिके अभिमानने अन्धाका लफ्फाबाज कर दिया, आज परमेश्वर भी काँटोपर कर्न जाने लगे ! जो बात हमारी कुछ तर्कसे गिह नहीं होती उसे हम किलीके भी कहनेपर कभी माननेका पैरार नहीं ! इसी दुरभिमानने मन्-शास्त्र और ज्ञानके अनुभवसिद्ध वचनोंमें कुछ भाव पैदा कर दिया। हम उन्हें कथिकी कल्पनायात्रा करा देने लगे। उनके अभिमानने जो हमें गरीब भाइयोंसे—अपने ही जैसे साथ पैदा करने—आइनोंसे सर्वथा अलग कर दिया। ऊँची जगहोंके उपासने मनुष्योंमें परस्पर घृणा उत्पन्न कर एक दुसरेको घेरे बना दिया। व्यभिचार, अत्याचार, अनाचार आज हमारे चिर संगी बन गये। बड़ेसे बड़े पुरुष आज हमारी तुलीपरी अङ्गुलिके सामने परीक्षामें फेल हो गये !

पद-मर्यादाकी तो बात ही निराली है, जहाँ कुर्बानि के कि आंचे फिर गयीं, आसपास उलझ दिखायी पड़ने लगी। धैर्यकी परतस्वतामूढक बुद्धिमत्ता इतना घण्ट, चालीनकी चाँदनीपर इतना इतराया !! अरे, रावण—हिरण्यकेशिनु—नरीने धरती तोलनेवालोंका पता नहीं लगा,

## भक्तोंका स्वरूप

( लेखक—श्रीरत्नाश्रय बालकृष्ण कालेलकर )

दुनियादार लोगोंकी दृष्टिमें भक्तलोग नरम मृत्तिकाके, सौम्य प्राणोंसे मालूम होते हैं। असमर्थ माने जाते हैं। यह लोकोक्ति मशहूर है। लेकिन यह बात अगर सच्चा होती तो भारतवर्षजैसे पराधीन राष्ट्रमें अधिकांश जनता भक्तोंका हा दिखायी देती। असली बात यह है कि सच्चे भक्त असाधारण वीर होते हैं। अपना हृदय, अपना मन, अपना शरीर और आकांक्षाएँ ईश्वरकी अर्पण करके वे निर्भीक हो जाते हैं। वे न डरते हैं न जानते, न डरते हैं समाजसे। निन्द्या स्तुति उनके मन समान होती है। और वे जानते हैं कि अपनी विजय तो इन्द्रियोंके जीतनेमें ही है। निरन्तर जैसा विरद्विजैता अपनी वासनाओंका गुलाम था। करीब करीब सारी दुनियाको वह जीत सका लेकिन घड़ीभरकी वासनाके वेगकी वह जीत नहीं सकना था। पर भक्तलोग प्रथम बात यह करने हैं कि अपनी वासनाएं अपने हाथमें नहीं।

फिर हम तो किस बागकी मूली हैं। सावधान हो जाओ। छोड़ दो इस विद्या-बुद्धि-वर्ण-धन-परिवार-पदके झूठे मदको, छोड़ दो अपने आप बाँधी हुई इन सारी फांसियोंको, छोड़ दो भगवा जगत्के मायिकरूपका, छोड़ दो मन उस अनादिकालसे नित्य बजनेवाली मोहनकी महा मायाविनी किम्बु मायानाशिनि प्रभु सुरली-ध्वनिमें और छोड़ दो—निश्चयात्मिका बुद्धिकी गतिकी निज नित्य-निकेतन विषय साथ आत्मपदके द्वारकी जोर !

सबको उस सर्वान्तर्वासीकी प्रतिमूर्ति समझकर सबसे अभिन्न प्रेम करो !

इसका साधन है भक्ति, इसीलिये आज यह कवित कल्याण अपने कवित स्रोतन वर्षकी भेंटमें भक्त और भक्तिके सुधासने सुधावने सुगन्धित खिले हुए रङ्ग-बिरङ्गे फूलोंकी टोकरी लेकर परम कल्याणके लिये पाठकोंके दरवाजेपर खड़ा है—

अच्छा लगे तो सुगन्ध लेकर स्वर्ग सुखी बनो और दूसरोंको बनाओ !

जय भक्तवत्सल भगवान्की !

फिर भी भक्तलोग नरमसे क्यों मालूम होते हैं ? कारण इसका ही है कि उनमें असाधारण उदारता, दया और दया होती है। जिन वस्तुओंसे सामान्य मनुष्य उत्तेजित हो सकता है वह उनको स्पर्श भी नहीं करती हैं।

एक तरहसे यों कह सकते हैं कि भक्तोंमें असाधारण स्वाभिमान होता है। किसी भी तरहसे वे आत्माको परास्त नहीं होने देते हैं। भक्तकी पहचाननेकी कसौटी क्या है ?

जिनके मन उच्चनीच भाव नहीं हैं वे भक्त हैं। शास्त्रधर्मसे हृदयधर्मको जो अधिक मानते हैं वे भक्त हैं। जीवनयात्रामें दुनियाके बाहरकी किसी चीजसे जिनकी आश्वासन मिलता है वे भक्त हैं।

जो अहदी आलसी हैं वे बिलकुल भक्त नहीं हैं। जो अपने माहात्म्यपर जीना चाहते हैं वे भक्त नहीं हैं। जो अपने प्रेमियोंके दोष ढँकते हैं वे भक्त नहीं हैं। जो समाजकी राजी रखनेके



वास्ते हीन रुढ़ीके हामी हैं वे भक्त नहीं हैं। हैं वे भक्त नहीं हैं। जो मौका आनेपर दुर्जनोंको जो समाजका अधःपात देखते हुए भी डरके और जालिमोंको धिक्कारते नहीं हैं, कायरतासे मारे चुप बैठ जाते हैं वे भक्त नहीं हैं। दुनियाके बैठ जाते हैं वे भक्त नहीं हैं।  
परिश्रमसे जो फायदा उठाते हैं लेकिन धर्मप्राप्त अगर सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो सच्चे सेवासे नफ़रत करते हैं और उसे कंकट समझते भक्तोंमें स्वच्छ पानीके सभी गुण मालूम होते हैं।

### महात्माजीका उपदेश

शुद्ध भक्तिका प्रायः लोप होगया है क्योंकि भक्तोंने भक्तिको सस्ती बना दी है। भगवान् तो कहता है कि भक्त वही बन सकता है जो सुधन्वाकी तरह उबलते हुए तेलमें कूद पड़े और हंसे अथवा जो प्रह्लादकी तरह प्रसन्नवदनसे जलते हुए स्तंभकी भेट करे जैसे परम मिलकी। मोहनदास करमचन्द गांधी।  
( प्रतिलिपि )

शुद्ध भक्तिका प्रायः लोप होगया है  
क्योंकि भक्तोंने भक्तिको सस्ती बना दी है  
भगवान् तो कहता है कि भक्त वही बन सकता है  
जो सुधन्वाकी तरह उबलते हुए तेलमें कूद पड़े  
और हंसे अथवा जो प्रह्लादकी तरह प्रसन्नवदनसे  
जलते हुए स्तंभकी भेट करे जैसे परम मिलकी।

मोहनदास करमचन्द गांधी

## ईश्वरभक्तकी पहचान

( ले०—पं० श्रीवासीरामजी शर्मा—संपादक 'पारीक प्रकाश' देहली )

जिसप्रकार ईश्वरभक्त होना कठिन है उसी प्रकार ईश्वरभक्तको जानना और समझना भी कठिन है। स्वयं सीधे सादे ईश्वरभक्त भी इस बातमें बहुत धोका खाया करते हैं। स्त्री बच्चों और बेपढ़े या कम पढ़े मनुष्योंके लिये ईश्वरभक्तका परखना विशेष कठिन है।

बहुतसे मूर्ख मनुष्य पागल, छली, कपटी, दम्भी, पाखण्डी, मायावी, मतलबी और दुष्ट पुरुषोंको ही उनके बाहरका भेष देखकर ईश्वरभक्त मान बैठते हैं। यदि सीता महारानीजी रावणका कपटवेश पहले जानलेतीं तो शायद उससे न हरी जातीं और इसीप्रकार छोटी अवस्थावाले लड़के भी दुष्ट पुरुषोंका कपटरूप पहलेसे जान लें तो उनके माया जालसे बच सकते हैं।

साधारण रीतिसे जो पुरुष सत्यवादी, इन्द्रिय-निग्रही, ब्रह्मचर्यव्रती, स्वार्थत्यागी, दयालु, परोपकारी, क्षमाशील, ज्ञानी, विनयी, सेवकभाव और निर्वैर होता है उसे ईश्वरभक्त समझना चाहिये। बहुतसे मनुष्य बाहरसे तिलक माला धारणकरके मुखसे ईश्वर नाम लेते हुए नजर आते हैं लेकिन उनमें बहुतोंके भीतरके भाव मलिन होते हैं। जो लोग ऊपरसे सादा चालचलन रखते हैं, सत्य और इन्द्रियदमन आदि अच्छे कार्य करते हैं उनको ईश्वरका प्रेम होता है। वे ही ईश्वरके सच्चे भक्त हैं। दुष्ट लोग भीतरके मलिन भाव छिपानेके लिये ऊपरसे ईश्वरभक्तिका स्वांग दिखाया करते हैं इसलिये उन्हें सच्चे ईश्वरभक्त न समझना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १२ श्लोक १३, १४में भगवान्ने भक्तकी पहचान बतलाई है:—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।  
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

वह पुरुष जो सब जीवोंसे द्वेष भाव न रखे, सबका प्रेमी, अकारण कृपालु, जिसके किसी बातमें ममता न हो, अहङ्कार न हो, जो सुख दुःखमें एक भावसे रहे, और दूसरेके दोषोंको क्षमा कर दे।

लगातार हानि या लाभमें एकसा संतुष्ट रहे, मनसहित इन्द्रियोंको अपने वशमें रखे और मुझमें जिसका निश्चय हो ऐसा मेरा 'भक्त' मुझे प्रिय है।

जिसने दम्भ दूर नहीं किया, जो अविद्यान्धकारमें फंसा हुआ है, जिसकी आशाएं नहीं मिटी हैं, सबमें वासनाएं बसी हुई हैं, जिसका क्रोध नहीं गया है, जो अच्छे पुरुषोंका संग नहीं करता है उसे ईश्वर-भक्त नहीं समझना चाहिये।

ईश्वरभक्त उसे ही समझना चाहिये जो दूसरोंको दुःख न दे, संकट पड़नेपर कष्ट सहनेके लिये तैयार रहे, सबकी भलाई करता रहे, ईश्वरमें दोष न निकाले, सब धर्मकथाओंको प्रेमसे सुने, किसीका माल न छिपा रखे, ईश्वरकी उपासना, पाठ, पूजा, प्रणाम आदि समयानुसार करता रहे उसे अवश्य ईश्वरभक्त समझना चाहिये।

ईश्वरभक्तके भाव बहुत ही शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं जैसा एक कविका वचन है—

मर जाऊं मांगू नहीं, अपने तनके काज ।  
परमारथके कारणे, मोहिं न आवे लाज ॥

ईश्वरभक्तका चेहरा चमकदार होता है नेत्र नीचे और नरम होते हैं। वह सबका हितैषी होता है। उसका स्वभाव सरल होता है। शरीरके शृंगारसे उसे नफरत और सादगीसे प्रेम होता है।

## श्रद्धा और भक्ति

( लेखक—पण्डितवर श्रीरामपतिजी मिश्र, बम्बई )



सी विशेष कारणके पराधीन हो-जानेसे बुद्धिमें प्रायः एक प्रकारक दोषसा उत्पन्न होजाता है जिससे ध्येय पदार्थका वास्तविक स्वरूप तो संशयास्पद ही रहजाता है और उस पदार्थका भान तथा निरूपण बुद्धिदोषके उत्पादक संस्कारोंके अनुसार किसी और ही रूपमें होजाया करता है। अनिच्छया बाधित होकर प्रमाणोंको प्रमाताके संस्कारोंका आश्रय लेना पड़ता है। यही कारण है कि प्रत्यक्ष अनुमिति या शब्दके अनुपाती सब ही विषयोंके तत्त्वनिर्धारणमें समकक्ष विद्वानोंके सिद्धान्त भी एक दूसरेसे अधिकांशमें विभिन्न हुआ करते हैं। नाम रूप और जातिकी अनिश्रित दशामें दूरस्थ वस्तुके प्रत्यक्ष विषयतया स्वरूपनिर्धारणमें जो बहुधा मतभेद अवगत होता है वहां भी बुद्धिदोष ही कारण माना जा सकता है। अनुमापक कारणमें भ्रम, आजाने-पर बुद्धिदोषके कारण अनुमान भी तर्क बनकर अप्राण बनजाता है। तात्पर्य यह है कि बुद्धिदोषके बिना किसी भी प्रमेयका प्रतिपादन शक्य नहीं कहा जासकता और बुद्धिका निर्दोष या समानदोष होना प्रायः असंभव ही प्रतीत होता है।

इस निर्दिष्ट विश्वप्रसृत सिद्धान्तके सार्वभौम आधि-पत्यसे अन्यान्य मान्य विद्वानोंके समान मेरा भी अधीनता-विधायक सम्बन्ध है अतः सर्वप्रथम यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि लेखका उत्तरदायित्व केवल मेरे भ्रमपूर्ण विरस विचारोंको है शास्त्र-तात्पर्यके साथ विश्वासाथ जोड़ा गया सम्बन्ध बहुत साधारण और स्वल्प है।

लक्षणसे पदार्थके निरूपणमें तत्पर विद्वान् इस रहस्यको भलीभांति जानते हैं कि लक्षणोंसे केवल साधारणतया समूहात्मक पदार्थोंका निरूपण साध्य किया जा सकता है। लक्षणोंका आश्रय इसीलिये लिया जाता है कि विभिन्न देशकालमें स्थित अपरिचित अपार पदार्थोंका बोध सुगमतासे अल्पकालमें होजाय। इस उपायसे पदार्थोंके बोधकी शैलीके आविष्कारने संसारपर अपार

उपकार किया है यह कहनेका अधिकार उन लोगोंको है जो स्वलक्षण और स्वरूपलक्षण लक्षणकी अनुपादेयता और अव्यवहारिकताको पूर्णरूपसे अवगत करते हैं। लक्षणसे तटस्थ लक्षणसे वस्तुके परिचय करने कानेसे पूर्व, परिचय वस्तुओंका एक समूह जो समानरूपसे किसी धर्मका पोषक होता है उन समुदायोंसे पृथक् किया जाता है जो भिन्न भिन्न धर्मोंके विरोधानुसंधानपूर्वक परिपोषक होते हैं। इस परिश्रमका फल यह होता है कि पदार्थगत धर्मोंके वर्गीकरण करनेमें सफलता और उन संसक्त धर्मोंके द्वारा पदार्थ-विभागकी क्रियामें प्रवीणता उद्बुद्ध होने लगती है। तो भी यह लुटि तो विशिष्ट व्यक्तियोंमें भी बनी ही रहती है कि उनसे भी नियतरूपसे वस्तुओंमें विद्यमान तारतम्यका ज्ञान स्वयं कदाचित् अवगत होनेपर भी लक्षणोंके विषय न होनेसे पर-प्रत्ययार्थ व्यक्त नहीं किया जासकता है। कहनेका आशय यह है कि लक्षणके, लेखके या उपदेशके द्वारा समान धर्मके सहारे साधारणरूपसे वस्तुका निर्देश या निरूपण साध्य है परन्तु तारतम्यका बोध अस्पष्ट होनेसे एवंरूपसे उपदेश्य नहीं है।

यद्यपि अनुभवी परोपकारी विद्वानोंने यह बतानेका यत्न किया है कि सत्त्व रज तम इन गुणोंके तारतम्यसे प्रतिकार्योंमें तारतम्य उत्पन्न होता है और यही कारण है कि चौरासी लक्षके स्वभावोंकी और समान स्वभावानुसार अमान संख्यक जीवसमूहकी ८४ लक्ष जातियोंकी अलग अलग विद्यमानता प्रामाणिक मानी जाती है। तो भी इसका आशय यह नहीं होसकता कि इतनेसे ही गुण-तारतम्यकी इतिश्री होजाती है। यह निर्देश दिग्दर्शन है, एक मनुष्य समुदायगत तारतम्यकी ओर दृष्टिपात करनेसे ही यह कहना पड़ता है कि इन मनुष्योंकी संख्याका ज्ञान साध्य है इनका पालन पोषण साध्य है परन्तु इनके स्वभावानुगामी तारतम्यका बोध मनुष्यप्रयत्नसे साध्य नहीं है।

प्रमाताके स्वभावकी ओर और स्वभाव-मूलक शृङ्गार आदि रसोंकी ओर ध्यान देकर पूर्वाचार्योंने श्रद्धा और भक्तिके तारतम्यका दिग्दर्शन कराया है उससे यह नहीं जान या मान लेना चाहिये कि श्रद्धा और भक्तिकी संख्या

इससे अधिक नहीं है। शृङ्गारके भेदोंके अनन्त होनेसे केवल शृङ्गार श्रद्धा और शृङ्गार भक्ति ही अनन्त प्रकारकी हैं। गीता आदि ग्रन्थोंमें बताये हुए विधा प्रकरणमें भेद भी दिग्दर्शन ही हैं। धर्माभूत प्रकरणमें दो हुई भक्तोंकी गुणावली भी दिग्दर्शन ही है।

शास्त्रमें श्रद्धाका लक्षण यह है। 'प्रत्ययो धर्मकार्येषु श्रद्धा' धार्मिक क्रियाओंमें विद्यमान आस्था-विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि बुद्धिविशेषका नाम श्रद्धा है इस बुद्धिविशेषका सम्बन्ध जहांतक धर्मकार्योंके साथ रहता है वहांतक वह बुद्धिविशेष श्रद्धाके नामसे प्रसिद्ध होता है। बुद्धिके बुद्धिविशेष बननेका कारण भी बुद्धिका धार्मिक-क्रियाओंके साथ संबन्ध ही है। कर्तव्य धर्मकार्यके उपदेशक शास्त्रमें निदिष्टफलके अवश्यम्भावमें शास्त्रके ज्ञाता गुरु-जनोंमें आस्थाका होना ही श्रद्धा है, फलके परोक्ष होनेपर भी उपायमें प्रवृत्त करानेवाली फलाशा भी श्रद्धा ही है। व्यवहार-धर्ममें भी श्रद्धाकी आवश्यकता रहती है। फलके दूरवर्ती होनेपर भी श्रद्धा ही व्यवहार-कार्यमें प्रवृत्त कराती है। श्रद्धा साक्षात् पदार्थ है यह जिस पदार्थको विषय करती है उसीके साथ इसका प्रयोग किया जाता है जैसे धर्ममें श्रद्धा, शास्त्रमें श्रद्धा, गुरुमें श्रद्धा, राजा में श्रद्धा इत्यादि यह लक्षण पारिभाषिक है।

अनुसंधानके बाद यह सिद्धान्त स्पष्टरूपसे सत्य प्रतीत होने लगता है कि श्रद्धा ही भावी संपूर्ण प्रेय और श्रेयसुखकी जननी है। श्रद्धा अन्ततोगत्वा अपने विषयके रूपमें श्रद्धावानको परिणत कर देती है। 'श्रद्धामवोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः' (गीता) इस उपदेशने श्रद्धाको ही समस्त कल्याण-परम्पराका सर्वस्व माना है। सामान्य प्रतिभाके उपयोगमात्रसे तृप्त विद्वान् वर्गका यह ऊहापोह उपहासास्पद है कि इस उपदेशमें मात्रासे अधिक संभावनाकी सीमासे परे श्रद्धाके सम्बन्धमें अर्थवादका निर्देश किया गया है। इस कथनके समर्थनसे पूर्व यह बतला देना उचित है कि इस सम्बन्धमें अन्यान्य शास्त्रोंका क्या मत है। 'कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति श्रद्धायामिति यदा ह्येव श्रद्धा दक्षिणां ददाति श्रद्धायां ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति' (बृह-अ० ३ प्र० ९) (दक्षिणाका आश्रय क्या है? इस प्रश्नका उत्तर है कि श्रद्धा-आस्तिक्यबुद्धि। उत्तरकी पुष्टिमें यह कहा गया है कि जब श्रद्धा उत्पन्न होती है

तो यजमान दक्षिणा देता है अतः कहा जाता है कि दक्षिणा श्रद्धाका आश्रय लेती है अर्थात् दक्षिणाका आश्रय आस्तिक्य बुद्धिस्वरूप श्रद्धा है। इस ग्रन्थसे यह उपदेश दिया गया है कि श्रद्धाप्रधान यज्ञ होम दान आदि सब शुभकार्य श्रद्धास्वरूप हैं। श्रद्धाके अस्तित्व दशामें यावत् शुभ कर्मोंका फलप्रद होनेसे अस्तित्व है। श्रद्धाके अभाव दशामें फलशून्य होनेसे कृत कर्मोंका भी अस्तित्वाभाव है। श्रद्धा और श्रद्धेय वस्तुके तादात्म्यमें जिनको सन्देह होता है वे 'तस्मिन्नेतस्मिन्ननौ देवाः श्रद्धां जुहति तस्याः आहुतेः सोमो राजा सम्भवति' (छान्दो-ख० ४) उस देवलोककी अग्निमें देवता लोग जिस आहुतिका हवन करते हैं उसका सोम राजा है। इस वस्तु स्थितिके अनुवादक श्रौत उपदेश पर विचार करें। उत्तर मिल जायगा कि अर्थवाद नहीं है पदार्थमात्र अपनी अपनी श्रद्धाकी सृष्टि हैं। यहां श्रद्धाको ही आहुति कहा है। स्मार्तप्रकरणमें भी श्रद्धा ही यावत् अभ्युदयोका कारण मानी गयी है। 'श्रुतिमात्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः। श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न करेण न चक्षुषा ॥ कायकेशेन बहुभिस्तथैवायं स्य राशिभिः। धर्मः संप्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि। श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतं पयः। श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥' (असि पु०) शास्त्रमात्रसे प्रमाणित ग्राहकरूपादि गुणोंके द्वारा अप्राप्य होनेके कारण सूक्ष्म प्रकृति पुरुष ईश्वर आदिका ज्ञानात्मक ग्रहण केवल श्रद्धासे होता है न कि किसी ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रियसे। श्रद्धावान् पुरुषके अनुभवमें प्रधान पुरुष ईश्वर परलोक पुनर्जन्म आदिके साधक युक्ति प्रमाणोंका आविर्भाव और तादृश युक्ति प्रमाणोंके ऊपर विश्वासका आविर्भाव होता है श्रद्धाहीन हीन मनुष्योंको निदिष्ट पदार्थका अस्तित्व अलीक प्रतीत होता है यह व्यवहार सर्वानुभव-प्रसिद्ध है। देवता भी श्रद्धाहीन रहकर अनेक प्रकारके शरीरकष्टसाध्य योग जप तप आदिसे या प्रभूत धनके व्ययसे सूक्ष्म धर्मकी सम्पूर्णतया प्राप्ति नहीं कर सकते। श्रद्धा ही उत्कृष्ट अतीन्द्रिय अदृष्ट है। अदृष्टके उत्पादक होम और हवनीय द्रव्य श्रद्धा ही है। ज्ञान-आत्मानुभव भी श्रद्धा ही है धर्मप्राप्य स्वर्ग और ज्ञानप्राप्य मोक्ष भी श्रद्धा ही है यह संपूर्ण संसार श्रद्धारूप है-श्रद्धाका ही विवर्त है-श्रद्धाका ही परिणाम है या श्रद्धाका ही कार्य है। श्रद्धापूर्वक



अवलोकन करनेसे यह सिद्धान्त स्पष्टतया प्रतीत हो जाता है कि उच्च नीच सभी पदार्थोंका अस्तित्व श्रद्धापदार्थमें अनुविद्ध हो रहा है। यह नाना वामरूपमें दृश्यमान संसार भी प्राणीसमूहकी श्रद्धाका ही विकास है। भगवान् श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्रके वर्णन-प्रसंगमें यह सिद्धान्त पुष्ट किया गया है। रङ्गमण्डपगत श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको देखनेवालोंने निज निज श्रद्धाके अनुरूप ही देखा था अनन्त-कल्याण-गुणराशिमेंसे या सर्वगुणविरक्त मन वचनके अविषय वस्तुमेंसे दर्शकोंको वे ही या वे गुण दीखने लगे जो पहलेसे ही उनकी श्रद्धामें सम्पन्न हो चुके थे। संपूर्ण व्यवहार या उसका अभाव श्रद्धामय है इस सिद्धान्तकी प्रत्यक्षरूपसे पोषक स्वप्नावस्था है। पुरीतती नाडीके मध्यमें प्रवेश करनेके बाद निजनिर्मित जगत्के साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छासे बाधित होकर जीवात्मा जिस सृष्टिका निर्माण करता है उसको जीव-सृष्टि संकल्प-सृष्टि या स्वात्मिक सृष्टि कहते हैं। इस सृष्टिके विलक्षण होनेमें या होनेमें श्रद्धा ही कारण है अर्थात् यह सृष्टि भी श्रद्धाका ही अन्वयतम व्यक्तरूप है। किसी दूरस्थ स्थानका दर्शन भी यह सिद्ध करता है कि श्रद्धाके साम्राज्यका आरपार नहीं है। जिसकी स्त्री खो गयी है और ढूँढ़नेको निकला है उसको उस दूरस्थ स्थानमें स्त्री होनेका सन्देह होता है। जो धन लेकर एकाकी जारहा है उसको आरण्यक तस्कर होनेका सन्देह होता है। इस दर्शन-वैजात्यमें श्रद्धाही हेतु है। सत्पुरुष धर्मराजने जो संसारको सार्विक भावमें देखा था और अविश्वास-नीतिमें निपुण सुयोधनने जो जगत्को जम्बूकके भावसे देखा था, इस भेद-दर्शनका कारण भी श्रद्धा ही थी।

निर्दिष्ट कतिपय प्रमाणों और तर्कोंकी सहायतासे यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि श्रद्धाका ही साम्राज्य सम्पूर्ण जगत् या यावत् प्रमाण प्रमेय व्यवहारपर है तो भी व्यवहारमें अभ्युदयके उन्मुख आस्तिक्यबुद्धिको ही श्रद्धा कहा जाता है। पदार्थके रूपको संकुचित बनाकर व्यवहार करना भी रुढिलक्षणासम्मत व्यवहार सर्वमान्य है। विश्वनाथको काशीनाथ या जगन्नाथको अयोध्यानाथ कहनेकी परिपाटीमें उक्त व्यवहार ही सहायक है।

‘स्रक् मे सुखं चन्दनं मे सुखं भार्या मे सुखं शरीरं मे सुखं त्यागो मे सुखं’ इन उदाहरणोंमें सुखके कारण स्रक् चन्दन वनिता शरीर और त्यागमें सुख शब्दका प्रयोग मिलता है

सही, परन्तु वास्तवमें माला चन्दन आदि सुख नहीं है किन्तु सुख विशेषके कारण हैं। इसी तरह ‘श्रद्धा स्वर्गः श्रद्धा मोक्षः’ इन उदाहरणोंमें भी श्रद्धाको स्वर्गका कारण या मोक्षका कारण समझना चाहिये। श्रद्धाको ही स्वर्ग या मोक्ष कहना एक प्रकारसे अनुभवका अपलाप करना है, यह भी एक मत है। इस सिद्धान्तके खण्डनमें लग जानेसे लेख विस्तृत हो जायगा और साम्प्रदायिक भेद उपस्थित होकर वैरस्य उत्पन्न करेगा। अतः समाधानकी उपेक्षा ही प्रस्तुत प्रतीत होती है। इस पक्षमें भी श्रद्धाकी शक्तिमें क्षति नहीं पहुँचती। यह पक्ष भी आस्तिकाभिमानकी ही है।

श्रद्धा संसारयात्रासे जब विरक्त होती है, जबसे इसको यह मालूम होने लगता है कि सांसारिक सुखका वर्णन अर्थवादपूर्ण है। अप्रासिद्धाशमें अपेक्षित होनेके कारण जो जो भाव आकर्षक मालूम होते थे, प्राप्त होनेपर वे ही कभी कभी उद्वेजक बनने लगते हैं। तब यह श्रद्धा विरक्त होकर संन्यास ग्रहण करती है और संन्यासप्राप्तिके अनुसार अपने नामको भी अन्यथा कर देती है अर्थात् श्रद्धा ही भक्ति कहाने लगती है। कर्म और उसके फलके सम्बन्धसे उदासीनता बतानेके लिये या कर्मफलसे नृस होनेके बाद उपरतिके आवेशमें आत्मभावका परिचय मात्र ही कर्तव्य कर्म अवशिष्ट रह जाता है इस सिद्धान्तकी सूचनाके लिये श्रद्धाका नाम परिवर्तन करना पड़ता है।

‘सा परानुरक्तिरीश्वरे’ (ईश्वरविषयक निरतिशय प्रेम भक्ति है) भक्तिशब्दका प्रयोग अन्य पूज्य सत्कार्य विषयक प्रेम-स्थलमें भी होता है अतः विषयनिर्देश अनावश्यक है। अथवा तो यह लक्षण पारिभाषिक भक्तिका है, इस आशयका पोषक है। एक मत यह भी है कि ईश्वर शब्दार्थ व्यापक है इसके लक्षणमें रहनेपर भी कोई दोष नहीं है। किसी किसी विद्वान्का यह मत हो सकता है कि ‘ईश्वरः सर्वभूतानां’ इस गीता और ‘ईश्वर प्रणिधानाद्वा’ इस योगसूत्रकी ओर दृष्टिपात कर लक्षणमें ईश्वररूप विषयका निर्देश किया गया है। परन्तु यह मत पारिभाषिक लक्षणमें गतार्थ हो जाता है। सिद्धान्त तो यह है कि लक्षणगत ईश्वर शब्दका अर्थ आत्मा है और यह लक्षण पारिभाषिक भक्तिका है।

‘यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतुल्यश्च मानवः। आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।’ ‘अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः’ (गी०) (जो आत्माको बाह्य-वस्तु-निरपेक्ष सच्चिदानन्द

स्वरूप समझकर निवृत्तिपरायण हो जानेपर आत्मामें निरतिशय प्रेम करने लगता है, आत्मज्ञानसे अपनेको तृप्त-परिपूर्ण मानने लगता है और आत्मातिरिक्त वस्तुओंमें अस्थिरताके भान होनेसे अननुरक्त होकर तन्मात्रमें ही स्थित परिपूर्ण तोषकी विषयताका ज्ञाता बन जाता है तो उसको और कोई कर्तव्य अवशिष्ट रहा मालूम नहीं होता है। (हे अर्जुन ! प्राणीमात्रका आत्मा मैं ही हूँ अर्थात् व्यष्टिका अभिमानी आत्मा मैं जीव हूँ और समष्टिका अभिमानी आत्मा मैं ईश्वर हूँ ।) इस सिद्धान्त-भूत उपदेशके रहस्यपर ध्यान देनेसे यह निष्कर्ष स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर शब्दार्थ समष्टिका अभिमानी आत्मा ही है अतः सूत्रस्थ ईश्वर शब्द आत्माका पर्याय है ।

‘यस्त्यक्त्वा प्राकृतं कर्म नित्यमात्मरतिर्मुनिः । सर्वभूतात्म-भूतात्मा स्याच्चेत्परतमागतिः’ ( महाभा० शा० प० ) इस उपदेशका आशय भी यही है। आत्मामें अनुरक्त मननशील प्रमाता जब अपनेको-अपनी आत्माको प्राणीमात्रकी आत्मा मानने लगता है तो फलस्थानीय आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है और पुण्यस्थानीय कर्मका त्याग हो जाता है। ‘तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्’ (ब० सू०) इस ब्रह्मसूत्रसे भी यही उपदेश मिलता है कि आत्माराम प्रमाता ही मोक्षका अधिकारी है। ‘आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानार्थक्यमतदर्शानाम्’ (जै० सू०) त्रैगुण्य-विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन’ (गी०) ‘सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।’ इन वचनोंसे आविर्भावित महान् विचार-समुद्रके मथनसे भी यही सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि यावत् श्रद्धाका संसार व्यवहारिक रहता है वहांतक यथाधिकार कर्म करना ही शास्त्रीय पन्था है अनन्तर स्वाभाविक विरक्ति आजानेपर सर्वाङ्गपुष्ट सर्पकी कंचुलीके समान कर्मरुचिके स्वतः अलग होकर विदा ले लेनेपर आत्मामें स्थित परिपूर्ण सुखके अन्वेषणमें तत्पर हो जाना ही शास्त्रीय ईश्वर भक्ति है ।

ईश्वरको जगन्नियन्ता और जगत्को नियम्य मानकर इन दोनोंमें स्थित स्वस्वामिभाव भी अन्ततोगत्वा व्यवहार ही है। इससे ही सन्तुष्ट होजाना भजनमें एक प्रकारका अन्तराय उपस्थित होना है। व्यवहारकी मर्यादा व्यवहार-सम्बन्धी नियमोंके त्यागमात्रसे ही पिण्ड नहीं छोड़ती है। अलग की हुई नौकरानी अपनी जगह जहांतक दूसरी नौकरानीको नियुक्त नहीं देखती है वहांतक वह पुनः

स्थानापन्न होनेका उपाय करती ही रहती है। शास्त्रकारोंने व्यवहार-मर्यादाका अस्तित्व भेदबुद्धिके अस्तित्वपर्यन्त माना है। ‘विज्ञानान्तर्यामिप्राणविराट् देहे पिण्डान्ताः । व्यवहार-स्थस्यात्मन एतेऽवस्थाविशेषाः स्युः’ (परमार्थसार) जहां तक यह भ्रम बना रहता है कि मेरा विज्ञान अन्तर्यामी प्राण विराट् और देहके साथ भेद सम्बन्ध है वहांतक व्यवहार-का-अपरमार्थ संसारका अस्तित्व बना रहता है कारण कि विज्ञान अन्तर्यामी आदि भेदसे भासमान पदार्थ व्यवहारस्थ आत्माके अवस्थाविशेष-शक्तिविशेष है उक्त परमार्थ-सारका अनुभव केवल निजी सृष्टि नहीं है। ‘सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवाः’ (तात्पर्य)-भेदसे भासमान ब्रह्मा इन्द्र प्रजापति शिव विष्णु आदि स्वामिस्थानापन्न ध्येय शास्त्रप्रमाण शास्त्र-विषय पदार्थ भी प्रज्ञानके-आत्माके नामविशेष हैं अर्थात् ‘अयं ब्रह्मा अयम् इन्द्रः’ आदि व्यवहार अपरमार्थ हैं ‘अहं ब्रह्मा अहम् इन्द्रः’ आदि व्यवहार ही परमार्थ हैं इत्यादि श्रुतियोंका अनुवाद है। भक्तिका मुख्य विषय आत्मा है इस सिद्धान्तकी पुष्टि व्यतिरेकरूपसे भेदोपासनाकी निन्दा-रूपसे भी की गयी है। ‘अथयोऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्यो-ऽहमसीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम् ।’ (जो यह समझता है कि मैं भक्त-उपासक भिन्न हूँ और मेरा उपास्य स्वामी मेरेसे भिन्न है वह देवताओं-विद्वानोंकी दृष्टिमें पशु पामर है) गीताकारने भी भेदभावको द्वितीय श्रेणीमें स्थान देना ही उचित समझा है। ‘पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथक् विद्वान् । वेत्ति सर्वेषु भूनेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्’ आत्मसे अतिरिक्त विषयके संयोगसे जायमान सुखको भी गीतामें द्वितीय श्रेणीका ही स्थान मिला है। ‘विषयेन्द्रियसंयोगाच्चतदग्रेऽमृतोपमम् । परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्’ (तात्पर्य)-भेदभावसे उत्पन्न ज्ञान और भिन्न वस्तुके संयोगसे उत्पन्न सुख ये दोनों राजस कहे जाते हैं। आत्मातिरिक्त वस्तु-निरपेक्ष ज्ञान और सुखके सर्वश्रेष्ठ होनेमें श्रुति और स्मृति दोनों एक मत है। ‘एवं विजानत् आत्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स्वराट्’ (छान्दो ३०) ‘यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्’ (गीता) (आत्मातिरिक्त ईश्वरादि भिन्न वस्तु निरपेक्ष ईश्वराभिन्न आत्ममात्रसापेक्ष बुद्धि-विशेष-रूप सुख ही वास्तवमें प्रथम श्रेणीका सात्त्विक-सुख है।

इस आशयको आरम्भमें स्पष्ट कर दिया है कि श्रद्धा और भक्तिकी अवस्थाएं अनेक हैं। तारतम्य-निर्देश-पूर्वक इनका लक्षण द्वारा परिचय कराना असाध्य है। अपनी अपनी इच्छासे हम लोगोंने श्रद्धा और भक्तिको भिन्न पदार्थ मान लिया है वास्तवमें ये दोनों आस्तिक्य बुद्धिकी अवस्थाविशेष ही हैं। कर्मप्रकरणमें अनुरक्त आस्तिक्य बुद्धिका श्रद्धारूपसे व्यवहार-निर्वाहार्थ अनुगम किया गया है आत्मज्ञानमें व्यापृत आस्तिक्यबुद्धिका भक्तिरूपसे व्यवहार-निर्वाहार्थ ही अनुगम किया है। व्यवहार, अविद्या, प्रेय, कर्मयोग आदि प्रवृत्तिमार्गविहारी पदार्थ श्रद्धाके साथी हैं। परमार्थ, विद्या, श्रेय, सांख्ययोग आदि निवृत्तिमार्ग-विहारी पदार्थोंकी सहकारिणी भक्ति है अर्थात्—‘लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञान-योगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।’ (सृष्टिके आरम्भमें मैंने ही ज्ञानयोग और कर्मयोग नामक दो साधनाओंको श्रेय और प्रेय फलके अर्थ कहा था ज्ञानियोंको ज्ञानके द्वारा श्रेय और कर्मियोंको कर्मके द्वारा प्रेयकी प्राप्ति होती है। श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते’ (कठ) (मनुष्यको कर्तव्यरूपसे ज्ञान और कर्म दोनों उपस्थित होते हैं धीर पुरुष प्रेयफलक कर्मसे श्रेय-मोक्षफलक ज्ञानको अधिक मानकर उसे ही अपनाता है। मन्द अधिकारी योगक्षेमप्रद होनेसे कर्मको ही अपनाता है) इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंमें बताये हुए कर्म और ज्ञानके साथ श्रद्धा और भक्तिका रूढ़ सम्बन्ध है। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि अधिकारीके मन्द और धीर नामक भेद व्यक्तिगत अवच्छेद-पार्थक्यके कारण नहीं बने हैं किन्तु अवस्था विशेषके कारण बने हैं। इस विषयकी पुष्टि ‘विद्यां चाविद्यां यस्तद्वदोभयं सह। अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते।’ (जो अधिकारी अविद्या और विद्या इन दोनोंको एक साथ जानता है वह अविद्यासे जन्म-मरणको पारकर विद्यासे मोक्ष प्राप्त करता है) इस मंत्रमें बड़े ढंगसे व्याख्या की गयी है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि अविद्या जन्म मरणके प्रवाहका हेतु है तथापि विद्याके आगमनको जानकर वह जन्म-मरण समुद्रका तारक बन जाती है। इसी तरह जो अविद्यामें-कर्ममें रत नहीं, वह विद्यावान्-ज्ञानवान्

नहीं हो सकता। इस सिद्धान्तका स्वरूपसे वर्णन रामगीताहीमें पाया जाता है। भगवद्गीताके प्रेमियोंसे मेरा अनुरोध है कि वे रामगीताको भी देखा करें। उक्त उपदेशका रहस्य यह है कि विद्या और अविद्या नामके दो उपाय स्वतन्त्रतया किसी फलके साधक नहीं हैं। मध्य मध्यमें प्रतीयमान फलोंमें वास्तवमें अनियत होनेसे फलबुद्धि करना भी बालुकाघटके छिद्रको बन्द करनेके लिये दक्षिणावर्त शंखका चूर्ण बनाना है। विद्यासे प्राप्य आत्मानन्दके अनुभवके लायक बननेके लिये विशिष्टरूपसे अविद्याका अनुष्ठान आवश्यक है। बिना कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्डका दर्शन दुर्लभ ही नहीं अलभ्य है। कर्ममें यह सामर्थ्य है कि विधिवत् सेवित होनेपर वह स्वर्गादिके समान, उससे भी अधिक सुखप्रद शान्ति दान्ति उपरति आदिका कारण बनकर निर्दिष्ट भक्तिका और परम्परया आत्मज्ञानका हेतु बन जाता है।

भक्तिकी परमहंसावस्था ही इसकी अन्तिम सिद्धि है या चरम तारतम्य है जब यह अवस्था निकटवर्ती होती है तो भक्त एकान्तवासको पसन्द करने लगता है। जन-समुदायको विक्षेपका कारण समझने लगता है तथा हठी विघ्नदलके दलनमें समर्थ शस्त्र असंग ही है इस सिद्धान्तसे सहमत हो जाता है। अब विलम्ब करना अनुचित है यह जानकर परमात्मा भी अपनी ‘तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते’ (निरन्तर सावधानीसे प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालोंको मैं वह ज्ञान देता हूँ जिससे वह भक्त मुझे शीघ्र ही पहचानने लगते हैं) इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करता है। आवरणको अलग कर देता है और भक्तको तत्काल ही ज्ञानवान् बना देता है।

ज्ञानी भक्तके सभी संचित कर्म भस्मसात् हो जाते हैं वह ‘न शोचति न कांक्षति’ की सहचारिणी ब्राह्मी स्थितिको पाकर अपनेको ब्रह्मभूत मानने लगता है और यह जाननेके बाद कि ‘ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।’ ‘तमेव शरणं गच्छ’ इस स्मृतिमें ‘तत्, शब्दसे निर्दिष्ट और ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज’ इस स्मृतिमें निर्दिष्ट अस्मद्, शब्दार्थ परमात्मा एक ही है भक्त, भक्ति भगवान् इस भेदभावसे मुक्त हो जाता है अपनी ज्ञानेष्टिको पूर्ण हुआ मानने लगता है और सोऽहम्, हंसोऽहम् कहने लगता है !

## असुरोंकी भगवद्भक्ति ।

( लेखक- श्रीरामनाथजी अग्रवाल, ग्वालियर )

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ।

मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीतवाक्कर्म करोतु कायः ॥ (भागवत ६-११-२४)



ल्याणके' प्रेमी पाठकोंने देवताओं और मनुष्योंकी भगवद्भक्तिके विषयमें बहुत कुछ पढ़ा सुना होगा, किन्तु आज हम कुछ असुरोंकी 'भक्ति' का हाल सुनाते हैं । राक्षसोंमें बहुत कम भगवद्-भक्त हुए हैं, फिर भी जो हुए हैं उनमें कई तो बहुत ही उच्च कोटिके और सर्वमान्य हैं । प्राचीन भागवतोंमें दैत्य-राज प्रह्लादका नाम तो मुख्य है ही ! असुरेन्द्र बलि महाराज भी एक प्रख्यात भगवद्भक्त हुए हैं, जिन्होंने अपने भुजबलसे उपाजित की हुई तीनों लोकोंकी सारी सम्पत्ति भगवान् विष्णुको उनका कपट जानते हुए भी क्षण भरमें दे दी और सत्यसे तनिक भी विचलित नहीं हुए, यद्यपि शुक्राचार्यने उन्हें बहुत मना किया था ।

रावणके छोटे भाई विभीषणका नाम तो आप लोगोंने सुना ही होगा, वे भी बड़े न्यायनिष्ठ और साधु पुरुष थे, किन्तु कुछ लोगोंने उनके चरित्रकी बड़ी भद्दी आलोचना की है । पर मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि जब एक भाई पराई स्त्री चुरा लाया हो और अपने दूसरे भाइयोंकी नेक सलाह न मानकर उनकी लात धूँसोंसे खबर लेता हो, उस समय दूसरे भाईका क्या कर्त्तव्य है ? श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें गिरते हुए विभीषणने दीन वाणीसे कहा था—

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥

श्रीरघुनाथजीने भी विभीषणका स्वागत करते हुए बड़ा भावपूर्ण उत्तर दिया—

कहु लंकेस सहित परिवार,  
कुसल कुठाहर वास तुम्हारा ।

खल-मंडली बसहु दिन राती,  
सखा धर्म निबहै केहि भांती ।

मैं जानी तुम्हारि सब नीती,  
अति-नय-निपुण न भाव अनीती ।

वरु भल वास नरक कर ताता,  
दृष्ट सङ्ग जनि देहि विधाता ।

इस संवादसे भली प्रकार विदित हो जाता है कि विभीषण एक न्यायनिष्ठ भगवद्भक्त थे, केवल साधारण बुद्धिके असुर नहीं !

वृत्रासुरकी भगवद्भक्तिका भी उल्लेख श्रीमद्-भागवतमें बड़ी सुन्दरतासे किया गया है । इस लेखके आरंभमें जो श्लोक दिया गया है वह वृत्रासुरने ही युद्धके समय भगवान्की प्रार्थनामें कहा था, इसके सिवा और भी कई भक्त हुए हैं ! परन्तु अभी मैं इस कथाका विस्तार न करते हुए वृत्रासुरकी कथाके अन्तिम श्लोक देकर इस निबन्धको समाप्त करता हूँ, मृत्युकालमें भक्त वृत्रासुरकी क्या ही सुन्दर अभिलाषा है—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं,

न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा

समञ्जसत्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः

स्तन्यं यथा वसंतराः क्षुधातीः ।

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा

मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥

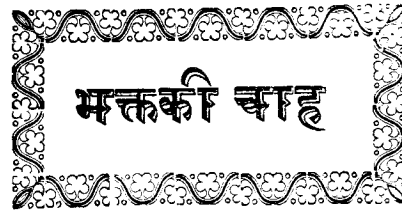


ममोत्तमश्लोकजनेषु सद्भ्यं  
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।  
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहे-  
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥

(भागवत ६।११।२५ से २७)

“हे प्रभो ! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्माका पद पृथ्वीका सार्वभौम राज्य, पातालका राज्य और आठों सिद्धियोंकी तो बात ही क्या है, मोक्ष भी नहीं चाहता । जिनके पंख नहीं निकलते हैं वे पक्षियोंके बच्चे जैसे भूखसे घबराकर माताके

आनेकी बाट देखते हैं, जैसे रस्सीमें बंधे भूखे बछड़े दूधके लिये आतुर होते हैं और जैसे काम-पीड़िता स्त्री अपने परदेश गये हुए पतिको देखनेके लिये व्याकुल होती है,—हे कमलनयन ! मेरा मन भी वैश्व ही आपके दर्शनके लिये उन्मुक्त है । मैं अपने कर्मोंसे संसारचक्रमें भ्रमण कर रहा हूँ आप पवित्रकीर्ति हैं। आपकी मायावश नेत्र नन् इस समय पुत्र, स्त्री, घर आदिमें आसक्त हो रहा है, हे नाथ ! ऐसी दया कीजिये जिससे मेरा मन इनमें आसक्त न हो और आपके भक्तोंसे मेरी मित्रता हो ।”



( लेखक—पं० श्रीनन्दकिशोरजी जुह, बानीभूपर )

( १ )

यह सत्य है, हैं आप मुझमें और मैं हूँ आपमें। जलमें भरी ज्यों भाप है, वह भी भरा है भापमें। हम आप दोनों एक हैं, है भिन्नता कहिये कहां, जिसमें नहीं हैं आप ऐसा तत्व त्रिभुवनमें कहां ?

( २ )

तो भी यही चित्त चाह है, सेवा करूं नित आपकी, सच्ची लगन हो हे प्रभो ! तब नामके शुभ जापकी । देखा करूं सुन्दर तुम्हारी मूर्ति ही मनमोहनी, सुनता रहूं सरसा कथा बस आपकी ही सोहनी ।

( ५ )

हे राम ! सेवक प्रार्थना यह पूर्ण कृपया कीजिये,  
दासानुदासोंमें दयाकर नाम मम लिख लीजिये ।  
है जीवके कल्याणका यह मार्ग ही उत्तम बड़ा,  
अतएव भगवन् ! शरणमें मैं आपकी ही हूँ पड़ा !

( ३ )

तन, नन, वचन, धनमें तुम्हारे निज पुत्र मैं करूं,  
विर, नेत्र, सुखमें श्रद्धा सनन्द चरणोदक धरूं ।  
फिर प्रेनविह्वल मस्त होकर गान गाऊँ आपका,  
जो है विनाशक पापका, संतापका, त्रय तापका ।

( ४ )

लज्जादि पाशविमुक्त होकर प्रेममें पूरा पगूं,  
श्रीमूर्तिके सम्मुख प्रमुदसे नाचने फिर मैं लगूं ।  
इससे अधिक सुख है नहीं, यदि हो न द्रंगा मैं कभी,  
भवदर्चनामें ही मुझे आनन्द मिलता है सभी ।

## एक मुसलमान सन्तका सदुपदेश

महात्मा अहमद अण्टाकी महान् साधक और तत्त्ववेत्ता पुरुष थे। आप अण्टाकिया नगरमें रहते थे। इनके सत्-वचनोंमेंसे कुछ यहां उद्धृत किये जाते हैं-

१-यदि तुम तत्त्वज्ञानी सन्तोंके साथ रहना चाहो तो श्रद्धा और निष्ठापूर्वक रहना, तभी उनकी कृपा तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रवेशकर तुम्हें सन्मार्गपर चलानेवाला दूत बन जायगी।

२-वैराग्यके चार लक्षण हैं:- (१) ईश्वरमें विश्वास, (२) संसारसे उपरामता, (३) ईश्वरके प्रति विशुद्ध प्रेम और (४) धर्मके लिये कष्ट उठाना।

३-साधकके हृदयमें जो प्रभुके प्रति लज्जा और प्रभुका भय कम देखनेमें आवे तो उसे अल्पज्ञानी समझना चाहिये।

४-मनुष्य जितना ही अधिक ज्ञानी होता है, वह उतना ही अधिक नीतिवान् और ईश्वरभक्त होता है।

५-जब तुम अपना सच्चा कल्याण समझोगे और खोजोगे, तब तुम्हें अपनी कमजोरियां भी दिखायी पड़ेंगी और तब तुम मन वाणीके संयमके लिये प्रभुकी सहायता जरूर चाहोगे।

६-कौनसा दीनतासे अधिक उपकार होता है? जिस दीनतासे तुम गंभीरप्रकृति और प्रसन्नचित्तवाले बन सकते हो उस ईश्वरके प्रति रहनेवाली दीनतासे न कि मनुष्योंकी दीनतासे।

७-जो ज्ञान तुम्हें दैवी सम्पत्तिकी ओर ले जाता है ईश्वरका उपकार माननेके लिये प्रेरणा करता है और लौकिक कामनाओंके हटानेमें सहायक होता है, वही सच्चा ज्ञान है।

८-जो इच्छाएं तुम्हारी कपटता, कृत्रिमता (बनावटीपन) और तुम्हारे आडम्बरोंको हटाती हैं वे दैवी इच्छाएं ही तुम्हारे लिये उपकारी हैं। लौकिक इच्छाएं नहीं।

९-जो मनुष्य छोटे पापोंको नाचीज समझकर करता रहता है, वह थोड़े ही समयके अन्दर महान् पापोंमें फँसकर अन्तमें बड़ी भारी विपत्तियोंका शिकार बन जाता है।

१०-उत्तम मनुष्य जहां अध्यात्म विद्याके सुखसागरमें डूबा रहता है, वहां साधारण मनुष्य मूर्खकी तरह आलस्य और अज्ञानके कंटीले जंगलोंमें भटकता करता है।

११-सब कामोंकी अपेक्षा अध्यात्मज्ञान प्राप्त करना ही सर्वोपरि लाभदायक है, क्योंकि ज्ञानकी प्राप्ति ईश्वर कृपाकी प्राप्ति के सदृश है।

१२-विश्वास एक ऐसी ज्योति है कि उसके एकबार हृदयमें प्रकट होते ही उसके प्रकाश द्वारा सारी पारलौकिक बातें अनायास ही समझी जा सकती हैं; इतना ही नहीं, उसके और परलोकके वाचमें बाधा देनेवाले सम्पूर्ण आवरण, पाप और विघ्नोंको भी यह ज्योति जलाकर भस्म कर डालती है जिससे साक्षात् प्रभुकी प्राप्ति हो सकती है।

१३-यदि तुम प्रभुके हा प्रेमी हो अथवा प्रभुकी ही कृपा प्राप्त करना चाहते हो तो, जब तुम कोई शुभ काम करो, तब उसके लिये लोग तुम्हारी वाहवाही करें, तुम्हें मान दें अथवा तुम्हारा स्मारक बनावें ऐसे लोकप्रतिष्ठाके भाव या किसी दूसरे लौकिक पदार्थकी इच्छा जरासी भी अपने मनमें मत आने दो। इसका नाम सच्ची सात्त्विकता (या निष्काम कर्म) है।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

**KAPWING**

१४-तुम सत् कार्य करो, तब ऐसी लगनसे करो कि मानों सारे जगत्में वह कार्य केवल अकेले तुमको ही सौंपा गया है, और वह भी ऐसी गुप्त रीतिसे करनेके लिये सौंपा गया है कि जिसमें उसको केवल एक मालिक ही देख सके।

१५-मनुष्य अपने जीवनके बाकी दिनोंका यदि सदुपयोग करे तो वह पहलेके सारे दोषों और पापोंको धोकर क्षमा पा सकता है।

१६-आन्तरिक रोगकी पाँच दवाइयाँ हैं—(१) सत्संग, (२) धर्म शास्त्रका अध्ययन, (३) स्वल्प आहार विहार, (४) रातकी और प्रातःकालकी उपासना और (५) जो कुछ किया जाय सो एकाग्रतापूर्वक और सारी शक्ति लगाकर करनेकी पद्धति।

१७-सदाचरणके दो प्रकार हैं—(१) जन समाजके साथ धर्म और नीति-पूर्वक बर्ताव करना, इसका नाम बाह्य सदाचार है और (२) प्रभुके प्रति ध्यान, भजन, श्रद्धा, प्रार्थना, संतोष, कृतज्ञता, उनके दर्शनकी आतुरता, प्रेम और उनका आज्ञापालन आदि रूप जो आचरण

किये जाते हैं, वे आन्तरिक सदाचार हैं।

१८-प्रभुके प्रति प्रेमके चार लक्षण हैं—(१) साधनमें आडम्बरका अभाव, (२) निरन्तर अध्यात्म-चिन्तन, (३) एकनिष्ठ प्रेम और (४) मौन भावका सेवन।

१९-सच्चा साधक जहांतक प्रभुका प्रेमी नहीं बन जाता, वहांतक लोगोंको अपना भाव नहीं दिखलाता, कोई बुलवाना चाहता है तो भी बोलता नहीं, विपत्तिमें घबराता नहीं, सम्पत्तिमें फूलता नहीं, डरता नहीं और किसीको डराता नहीं। किसीको वचन देता भी नहीं और लेता भी नहीं।

२०-भयका फल पापोंसे दूर रहना और परमात्माकी श्रद्धाका फल उसे खोजना है। जो मनुष्य अपनेको नीतिवान् या उपदेशक बताता है परन्तु पापसे दूर नहीं रहता; या जो अपनेको श्रद्धालु और भक्त बतलाकर भी प्रभुकी खोज नहीं करता या उसकी आज्ञाका पालन नहीं करता, ऐसे दोनों ही मनुष्य सर्वथा झूठे, बड़े पाखण्डी और महान् ठग हैं\*।

## आश्वासन !

होनी थी जो कुछ हाय ! सो तो अब हो ही चुकी,  
व्यर्थ ही के लिये अब, यह रोना-धोना है !  
आँसूसे भिगोना वस्त्र, खोना समयका वृथा,  
याही गति एक दिन—सब हीकी होना है !!  
'विह्वल' इस देहके—वास्ते न रोना इष्ट,  
यह तन मानों एक-मिट्टीका खिलौना है !  
मूर्तिकार मूर्ति यूँ ही-बिगाड़ता नित्य—प्रति,  
बनाता नमूना नित्य—दूसरा सलोना है !!

—वैद्यनाथ मिश्र 'विह्वल'

\* मुस्लिम महात्माओंसे—